Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 4 | ISSUE : 6 | JUNE 2018

राष्ट्रकूटों का उत्कर्ष

डॉ. विनय शंकर मिश्रा [1]

[1] एम. ए.(प्राचीन इतिहास), पीएच.डी.,मगध विश्वविद्यालय, बोध-गया।

ABSTRACT

Keywords:

आठवीं सदी से दसवीं सदी का भाग दक्कन के इतिहास में राष्ट्रकूट राजवंश का बड़ा महत्व है । वातापी के चालुक्यों के पतन के बाद इनकी राजनीतिक गतिविधि से संपूर्ण दक्षिण भारत प्रभावित रहा । आठवीं सदी में ये अचानक नहीं आये वरन् पांचवीं सदी के आरंभ में ही इनके बारे में पता लगा । अतः कम जानकारी होने के कारण, इनके प्रारंभिक इतिहास के बारे में विशेष जानकारी नहीं मिली है, यह केवल चालुक्यों के इतिहास देखने से ही पता चलता है कि चालुक्यों ने राष्ट्रकूटों से राज्य छिना । (The Chalukyas had wrested the sovereignty, of the Deccan from the Rastrakutas).[1]

आठवीं शताब्दी के छठे दशाब्द में दक्षिण में राजनीतिक प्रभुता चालुक्यों के हाथों से निकलकर राष्ट्रकूटों के हाथ में चली गयी ।

राष्ट्रकूट किसी जाति या कबीले का नाम नहीं है । मध्ययुग में जैस देश अथवा जिले के अधिकारी को 'देसाई' या 'देशमुख कहते थे, उसी प्रकार राष्ट्रकूट उस भौगोलिक इकाई के शासक थे, जिसे 'राष्ट्र' कहते थे । प्राचीन काल में राज्यों का विभाजन राष्ट्रों में होता था 'ग्राम' के अधिकारी का अभिवान 'ग्रामकूट' था, वैसे ही 'राष्ट्र' के अधिकारी का विभाजन राष्ट्रकूट था । इसके पहले के अभिलेखों में इसके ही अन्य नाम जैसे संस्कृत में राष्ट्रीय और प्राकृत में 'रठिक' मिलते हैं । सातवीं और आठवीं शताब्दी के दक्कन के दानलेखा में ग्रामकूटों और राष्ट्रकूटों को हिदायत दी गई है कि वे दान-ग्रहीतावों के भोग में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें । यही नहीं, 742 ई- के एक दानलेख में दंतिदुर्ग, जो राष्ट्रकूट वंश का संस्थापक था, स्वयं अन्य राष्ट्रकूटों को हिदायतें देता है कि वे दान-ग्रहीता के भाग के किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें ।

राष्ट्रकूट 'राष्ट्र' का अधिकारी होता था । इस राष्ट्र का आकार हर सदी और शासक वंश के अनुसार घटता-बढ़ता रहता था ।[2] मौर्यों के शासन में राष्ट्रीय गुजरात या काठियाबाड़ प्रांत का शासक होता था । ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में महाराष्ट्र और बरार में रठिक या महारठिक, जो परवर्ती राष्ट्रकूटों के तुल्य थे, जिस राष्ट्र के शासक होते थे वह इससे काफी छोटा इलाका होता था । उनके अधिकार क्षेत्र आधुनिक दो या तीन जिलों से बड़े नहीं होते थे । कभी-कभी तो वे जिलों के और छोटे भाग यानी ताल्लुकों और तहसीलों के बराबर के इलाकों के अधिकारी होते थे । ये अधिकारी सदा केन्द्र के अधीन होते थे । यदि केन्द्र दुर्बल पड़ा तो ये उसके स्वतंत्र या अर्धस्वतंत्र शासक बन जाते थे और फिर वे छोटे सामंत घरानों की स्थापना कर लेते थे ।

राष्ट्रकूट कौन थे इसका उत्तर दे पाना कठिन है । परवर्ती अभिलेखों इन्हें यदुवंशी क्षत्रिय कहा गया है । उनके पूर्वज को 'रट्' बताया गया है । यह 'रट्' कोई काल्पनिक व्यक्ति प्रतीत होता है ।[3] परन्तु यह कथन इसके बाद के लेखों में मिलता है, प्रारंभ के लेखों में नहीं । इससे अनुमान लगता है कि राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति का यह मतवाद में ही कल्पित किया गया था । इस वंश के एक राजा गोविन्द तृतीय की तुलना यदुवंशीय श्रीकृष्ण से की गई है ।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द तृतीय यदुवंशीय न था ।

बर्नेल का विचार है कि राष्ट्रकूट आन्ध्रदेश की आधुनिक द्राविड जाति रेड्डि से संबंधित है ।[5] वे तेलगू थे । परंतु यह मत भी असंगत प्रतीत होता है । यदि राष्ट्रकूट तेलगू थे तो उनका उदय और कार्य-क्षेत्र आन्ध्र प्रदेश होना चाहिए था । परन्तु ऐसा नहीं है । आन्ध्र प्रदेश अधिकतर राष्ट्रकूट साम्राज्य से बाहर ही रहा था । पुनः उनकी भाषा कन्नड़ थी, तेलगू नहीं । इसके साथ-साथ 'रेठि' अथवा 'रेड्डि' शब्द का तेलगू रूपान्तर नहीं हो सकता ।

आर-जी- भण्डारकर का कथन है कि राष्ट्रकूट तुंग नाम के एक राजा की संतान थे । कहंद और देवली ताम्रपत्रें में राष्ट्रकूट-वंश के राजा कृष्ण तृतीय को तुंग राजा से उत्पन्न बताया गया है । परन्तु इतिहास इस नाम के किसी भी राजा से परिचित नहीं है । यह काल्पनिक नाम प्रतीत होता है । पुनः यदि तुंग को ऐतिहासिक पुरुष भी स्वीकार कर लिया जाय तो हमें उसके वंश, जाति इत्यादि के संबंध में कोई ज्ञान नहीं है ।[6]

फ्रलीट के अनुसार, राष्ट्रकूट उत्तरी भारत के राठौरों से संबंधित थे ।[7] परन्तु राठौरों की उत्पत्ति राष्ट्रकूटों के बाद की है । अतः यह मत भी आग्रह प्रतीत होता है । सी-वी- वैध राष्ट्रकूटों के मराठों के पूर्वज मानते हैं । परन्तु राष्ट्रकूट कन्नड़वर्गीय और कन्नड़ भाषा-भाषी थे । उनकी भाषा मराठी नहीं थी ।

डॉ- अल्तेयर राष्ट्रकूटों की रिठकों की संतान मानते हैं ।[8] रठिकों का उल्लेख अशोक के अभिलेखों में हुआ है । नानाघाट अभिलेख में इन्हीं रठिकों को महारठी कहा गया है । खारवेल के खण्डगिरी अभिलेखों में भी रठिक जाति का उल्लेख है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस जाति के लाग महाराष्ट्र और कर्नाटक के प्रदेशों में बहुत दिना तक सामन्तों के रूप में शासन करते थे । राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति इन्हीं महारठियों, रठियों अथवा रेछियों से हुई थी ।

मूल निवास स्थान:

जिस भूभाग विशेष के शासक राष्ट्रकूट थे मूलतः कहना कठिन है । यह मानना भी समीचीन नहीं है कि आठवीं सदी के अंतिम दशकों में जिस राष्ट्रकूट वंश का एक महान राजनीतिक शक्ति के रूप में उदय हुआ, उसका जन्म अशोक के समय में ही हो चुका था और वे 'रष्ट्रिक' रूप में गिरिनार और काठियावाड़ के रूप में प्रांतीय शासक थे अथवा आरंभिक ई- सदी में महाराष्ट्र के शासक 'रथिक' या 'महारथिक' इनके पूर्वज थे ।

पाँचवीं एवं सातवीं सदी के मध्य, अभिलेखों से पता चलता है कि तीन राष्ट्रकूट राजवंश थे-प्रथम, मानपुरा के राष्ट्रकूट', द्वितीय, बरार क्षेत्र के राष्ट्रकूट और तृतीय, दन्तिदुर्ग, जो 'मान्यखेट घराना''[10] के नाम से जाना जाता था ।

The Manpura, House is known through the undikavatika[11] grant[12] of Rastrakutas Abhimanyu, Pandurangapali[13] plates[14] of Avidheya and the Hingni Berdi plates[15] or Rastrakuta Vibhuraja.

उपर्युक्त रेकर्ड की सहायता से राष्ट्रकूट मानपुरा की वंशावली इस प्रकार होगी

मनाका (Mananka)
देवराज (Devaraja)

मान्यराजा (Manaraja) या विभुराज (Vibhuraja)	अभिधेय (Avidheya)	भविष्य (Bhavisya) | अभिमन्यु (Abhimanyu)

देवराज पुत्र था, जबकि विभुराज, अभिधेय और भविष्य मनांका के पौत्र थे ।[16] The family first came to light through the Undikavutika grant of Abhimanyu published by pt. Bhagwantal)

इसने ही राष्ट्रकूट नाम दर्शाया तथा इसके राजाओं क्रमशः मनांका, देवराज, भविष्य और अभिमन्यु के बारे में जानकारी दी । देवराज के दो अन्य पुत्रें के बारे में अभिलेख में उल्लेख नहीं है । मानपुरा से अभिमन्यु द्वारा प्लेट जारी करने पर ज्ञात होता है कि हरिवस्ता दुर्ग के कमांडर जयसिम्हा की उपस्थिति में परावरजीता गाँव का हेराफेरी भी सम्पन्न हुआ था ।[17] यदि इस रेकर्ड को छठी सदी का मान लिया जाय तो इस वंश के जयसिम्हा को चालुक्य वंश के जयसिम्हा वल्लभ के बारे में प्रमाणित किया जा सकता है ।[18] फ्रलीट ने राष्ट्रकूटों को मध्य प्रदेश का मूल निवासी माना था क्योंकि अनेक लेखों में राष्ट्रकूटों को 'लटलूर पुरवराधीश' (सर्वोत्तम नगर लटलूर के स्वामी) कहा गया है और फलीट महोदय के मत में लटलूर नगर मध्य प्रदेश के विलासपुर जिले का वर्तमान रतनपुर है । परन्तु आज अधिकांश विद्वान लटलूर नगर का यह समीकरण नहीं मानते । उनके अनुसार, लटलूर को हैदराबाद राज्य के वेदर लिये का लाटूर मानना चाहिए । यहाँ आज की भांति उस समय भी कन्नड़ भाषा बोली जाती थी ।

आधुनिक लाटूर ही राष्ट्रकूटों का मूल निवास स्थान था । यहीं से ये बरार गये थे । राष्ट्रकूटों के एक प्रारंभिक राजा नन्नराज को हम 621 ई- में बरार में चतुर्दिक प्रदेश में राज्य करते हुए पाते हैं ।

फ्रलीट के मतानुसार दक्खिन शिव रेकर्ड भगवान शिव का तीर्थ स्थान हो सकता है जो मध्य प्रदेश के हौशंगाबाद जिले के महादेय पहाड़ी में स्थित है ।[19] पं- भगवानलाल ने मानपुर को मान्यखेड से पहचान कराने की भी चेष्टा की है जो राष्ट्रकूट रेकर्ड से स्पष्ट होता है कि यह उनकी राजधानी रही होगी । अल्तेकर ने इस स्पष्टीकरण को स्वीकार नहीं किया है । उनके अनुसार सातवीं सदी में राजधानी मानपुरा यदि वास्तव में रही होगी तो 'पुरा' को 'खेता' में बदल जाना चाहिए था क्योंकि 'पुरा' शहर या राजधानी के लिए प्रयोग होता था तथा 'खता' केवल छोटों कस्बों के लिए ही । अभिमन्यु एवं उसके पूर्वज छोटे शासक थे यदि हम मानपुरा को मान्यखेड से मिलाते हैं तो उनका साम्राज्य बहुत ही बड़ा रहा होगा ।[20] फ्रलीट ने इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया है कि 650-700 ई- के बीच मान्यखेड में राष्ट्रकूट साम्राज्य रहा होगा । उन्होंने इसे मानपुर से जोड़ा है लेकिन इसे नर्मदा के उत्तर माना है ।[21] उन्होंने आगे मानपुर के साथ पहचान की है (रीवां के बन्दोगढ़ से समीप)[22] लेकिन उन्होंने इसे भी नहीं माना है क्योंकि यह महादेव चोटी से बहुत दूर है । करीब 300 किमी- । उनके मतानुसार मानपुरा, सोहागपुर अथवा शोभापुर का प्राचीन नाम हो सकता है । भ्नसज्रेबी ने फलीट के मत को स्वीकार किया है जबकि अल्तेयर[23] और एच-भी- त्रिवेदी[24] फलीट को दूसरे मत को स्वीकार करते हैं कि राजधानी मालवा में अविस्थित होगी । लेकिन मिराशी[25] द्वारा मानपुरा का मान के साथ यह पहचान कि दक्षिण महाराष्ट्र के सतारा जिले के

मान तालुका में स्थित रहा होगा, ज्यादा तर्कसंगत एवं सर्वमान्य लगा ।

The seal of the Khrair plates[26] states that the Sudeveraja, its grantor, was the son of Manamatra, who was the son of Prasunna, sten known, the editor of the inscription, suggested the identification of Mananka and Devaraja with Manamatra and Sudevaraja respectively, both belonging to the dynasty of Sarabhapura. In support of his hypothesis, he pointed out that since the words Matra and Anka both mean 'omamenet', the person named Manamatra may be identical with Mananka[27], (though known was not very much convinced of his own suggestion). The suggestion was approved by Fleet[28], J. Dubreuil[29] and M.H. Krishna.[30] Dubrevil even prepared a combined genealogy of the line as under.

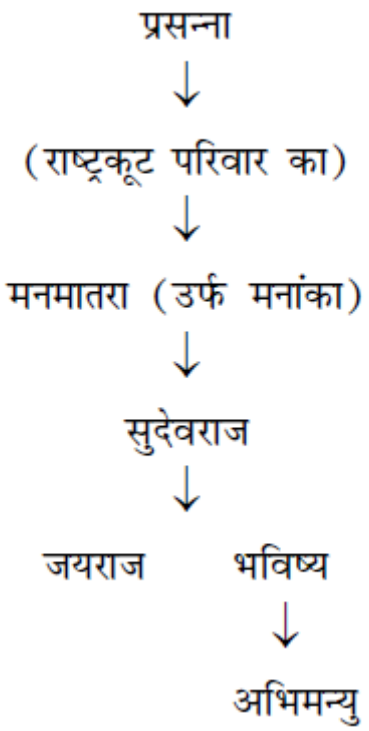

एम-एच- कृष्ण ने अभिधेय को देवराज का तृतीय पुत्र माना है ।[31] कृष्ण ने बतलाया है कि प्रसन्न ने वाकाट्क राजा हरिषेण के तुरंत बाद ही अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की होगी तब कमजोर एवं अयोग्य राजा वाकाट्क गद्दी पर बैठे होंगे । लेकिन कृष्ण इस बात की पुष्टि नहीं कर सके है कि प्रसन्न ने अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना सर्वपुरा (महानदी के किनारे) में की थी या मानपुरा (नर्मदा के किनारे) में । उन्होंने बतलाया है कि सर्वपुरा (Sarabhapura) आरंग और रायपुर प्लेट में पूर्वी राज्य के रूप में अंकित है और मानपुरा शब्द मानेका या मान्यत्र के रूप में जबकि नर्मदा घाटी राष्ट्रकूटों का उद्गम स्थल है तथा हो सकता है कि प्रसन्ना ने वहीं अपना राज्य स्थापित किया होगा । लेकिन दो घरानों के राजाओं के[32] नामों में अंतर होने से पहचान करना बड़ा मुश्किल जान पड़ता है ।

भी-भी- मीराजी उपर्युक्त संदर्भ को निम्नांकित तथ्यों के आलोक में स्वीकार करते हैं:

1- कि व्यक्तिगत राजाओं के नामों में अंतर होने से स्थिति स्पष्ट नहीं होती है_

2- कि आरंग प्लेट के अनुसार यजराज, सुदेवराज का चाचा था न कि उसका पुत्र_ और

3- मनांका और मन्मात्र के सील के चरित्र में काफी भिन्नता है ।

The characters of former are inscribed in the Western variety of the southem alphabet while those of the latter belong to the so called box-headed characters of central India. The seals of the charters of the former bear the figure of a lion facing the proper right while those of the latter carry the figure of a standing Lakshmi with an elephant on either side pouring water on her[33] and concludes that Manamatra belonged to an altogether different dynasty than the so called dynasty of Sarabhapura.

डी-सी- सरकार ने तथ्यों को स्वीकारते हुए लिखा है कि दोनों घरानों के सील चरित्र में अंतर होने से, सर्वपुरा के चित्रें ने राष्ट्रकूट होने का दावा नहीं किया है और दोनों परिवारों ने अलग-अलग राजधानियों से अलग सीमा रेखा होने का भी खंडन किया है ।[34] कृष्ण यद्यपि, दोनों घरानों के बीच मधुर संबंध की बात स्वीकारते हैं तथा तर्क देते हैं कि वाकाट्क चालुक्यों द्वारा घोषित नहीं किये गये बल्कि प्रारंभिक राष्ट्रकूटों द्वारा तथा आगे लिखते हैं कि देवराज पुत्र राष्ट्रकूट राजा मनांका के तीन पुत्र थे-अभिधेय, जयराज और भविष्य । मनांका साम्राज्य विस्तृत भू-भाग क्षेत्र में फैला हुआ था । उत्तर में महानदी और ताप्ती तथा दक्षिण में भीमा तक । जयराज का राज्य महानदी के पूर्वी भाग तक, भविष्य, उत्तरी महाराष्ट्र एवं पूर्व में मध्य भारत तक जबकि अभिधेय का दक्षिणी महाराष्ट्र, जो कि भीमा के तट एवं महादेव पहाड़ी तक विस्तृत था तथा तीनों राज्य महाराष्ट्र के नाम से विख्यात थे । आगे, राष्ट्रकूट इन्द्र जो कि कृष्ण का पुत्र था और गोविन्द जिसका वर्णन मिलता है कि चालुक्य जयसिम्हा एवं पुलकेशिन द्वितीय द्वारा पराजित हुआ, इसी परिवार से सम्बद्ध था, जिसे गद्दी स हटाकर पुलकेशिन द्वितीय तीनों महाराष्ट्र का सम्राट बना ।

कृष्ण के बारे में विचारधारणायें, इतिहासकारों में मतभेद पैदा करती हैं । अल्तेयर, [35] पांचवीं एवं छठी सदी में ऐसे विस्तृत महाराष्ट्र के बारे में सहमत जान नहीं पड़ते हैं । मिराशी, कृष्ण से सहमत होते हुए अल्तेकर के विचारों से सहमत जान नहीं पड़ते हैं । यद्यपि ये अल्तेकर के इस विचार में अवश्य सहमत हैं कि छठी सदी में वादामी के चालुक्यों के उत्थान के पूर्व दक्कन में राष्ट्रकूटों का विस्तृत साम्राज्य नहीं रहा होगा । इनका दृढ़ विचार है कि मनांका का मान्मात्र के साथ एवं देवराज का सुदेवराज के साथ पहचान होने के कारण ही

ऐसा विचार घर कर गया, जबकि साक्ष्यों का पूर्णतः अभाव है । उनके अनुसार अभिधेय का राज्य दक्षिण महाराष्ट्र के सतारा, कोल्हापुर और शोलापुर आदि जिलों में रहा होगा जबकि अभिमन्यु का उसी भाग पर अधिकार था । मिराशी ने अभिमन्यु की राजधानी मानपुरा का संबंध मान के साथ जोड़ा है जो दक्षिण महाराष्ट्र के सतारा जिले में ही स्थित रहा होगा । जबकि विद्वान शोधकर्त्ता ने अभिधेय और अभिमन्यु के राज्यों की सीमाओं का वर्गीकरण नहीं किया है जबकि मानपुरा का मान के साथ संबंध को सभी ने स्वीकारा है ।[36] एम-एच- कृष्ण की यह धारणा कि राष्ट्रकूट विस्तृत भू-भाग के स्वामी थे जिनमें दक्षिण कौशल, मध्य भारत एवं दक्कन का विस्तृत भू-भाग शामिल था, केवल अवैज्ञानिक पद्धति पर ही आधारित है । मिराशी ने उंदकवतिका में वर्णित जगहों को भी खोजने का प्रयास किया है । उंदकवतिका, दान में दिया गया गाँव था, जिससे उंदेल का (सतारा जिले के करहद तालुका) बोध होता है एवं पेथपंगराका जहाँ दक्षिण शिव का मंदिर था, पंगारी का बोध कराता है ।

डी-सी- सरकार विदर्भ एवं अस्मक की पहचान वाकाटकों के बरार एवं वत्सगुल्म से करते हैं । उन्होंने बतलाया है कि अस्मक देश की प्राचीन राजधानी पौदान्य यानि आधुनिक पेठन तथा कलिंग, विदर्भ एवं अवन्ति-दक्षिणापथ आदि थे । वत्सगुल्म के वाकाट्क जो उतरी हैदराबाद के शासक भी रहे थे, का संबंध नांदेड़ से भी था जो बोधन से दूर नहीं था, ज्ञात होता है कि उनकी सीमा अस्मक के रूप में भी मानी जाती थी । ब्राह्माण बाबरी के शिष्य जो अस्मक में गोदावरी के किनारे रहते थे, ने उत्तर भारत की यात्र भी की गयी थी । इस तिथि के संदर्भ में मिराशी अस्मक को गोदावरी के दक्षिण37 में बतलाता है । मिराशी ने वत्सगुल्मों के वाकट्क साम्राज्य के अधीन अस्मक के होने का खंडन भी किया है क्योंकि राजशेखर ने काव्यमिमांशा में वत्सगुल्मां को विदर्भ में स्थित बतलाया है ।38 अस्मक् को विदर्भ से अलग ही दर्शाया गया है । काव्यमिमांशा से पता चलता है कि गोदावरी अस्मक एवं मुलका के बीच विभाजन रेखा का भी काम करती थी । डी-सी- सरकार का यह विचार कि अस्मक देश मुलका को भी साथ रखे हुए था एवं वत्सगुल्म वाकाट्कों की सीमा भी अस्मक की राजधानी आधुनिक बोधन थी जो वस्तगुल्म से 160 किमी- दूर थी । यद्यपि, इस तर्क से सहमत होना भी कठिन है कि अस्मक देश हैदराबाद एवं मीर जिलों के अतिरिक्त बोधन तक विस्तृत था । एक अभिलेख के अनुसार-

On the basis of an inscriptional passage concerning Jaysimha II of the later chalukya dynasty and a statement in the Udaya sundrikatha, Mirashi further suggests that kuntala comprised the upper valley of the Krishna.

जयसिम्हा ने 1015 ई- से 1043 ई- के बीच शासन किया होगा जबकि सोधना (Soddhala) 1000 ई- में रहा होगा । दोनों स्रोतों से ज्ञात होता है कि-

They relate the political condition prevalent at the end of the 10th century or the beginning of the 11th century A.D. and have absolutely no bearing on the conditions of the 5th-6th centuries A.D. The verse, which says that 'Jaysimha shines in the Kuntala country where the well known river kranavarue flows should, therefore, be understood in the above context only.

आश्चर्य नहीं कि उत्तर पश्चिम चालुक्यों ने अपने को कुंतला का मालिक बतलाया ग्यारहवीं दी के ढुंतला की सीमा रेखा पांचवीं एवं छठी दी के कुंतला से भिन्न थी ।[39] मिराशी का यह विचार कि कुंतला पांचवीं सदी में कृष्ण का उपरी क्षेत्र में भी विस्तृत था उचित नहीं लगता क्योंकि उससमय कुंतला पश्चिमी दक्कन एवं उतरी मैसूर में फैला हुआ था ।[40] जैसा कि आर- साथिनादियर[41] द्वारा दिखलाया गया है कि कुंतला में सात वाहनों के बाद चुट्स आये जिनकी राजधानी बनवाली थी तथा इकसे बाद पल्लव एवं कदम्ब इस क्षेत्र के सम्राट बने ।

The thory identifying kuntals as the territory of the Rastrakutaa of Manapura, is based on the wrong interpretation of the expression kuntalanam prasaita[42] as ruler of the kuntalas. The real meaning of the passage, however, is chastiser of the kuntalas (i.e. of the kadamabas)[43] Thus there seems to be no satisfactory evidence in support of Marashl's view[44] that Manaka and his successors were rulers of the kuntala country and that they were the lords of the kuntala referred to in the kuntalesvaradautya and the vakataka inscriptions.[45] Mananka was, the in fact, a chastiser (Prasasista) of the kuntalas, who were none else than the kadambas of kanarse country.[46]

कालिदास के कोतल्यवरदात्य (जैसा कि राजशेखर कृत काव्यमीमांशा में वर्णित है), शृंगार पक्ष और भोज के सरसबलीकेंठवर्ण एवं क्षेमेन्द्र के औचित्यविर्चयों को देखने से स्पष्ट होता है कि कालिदास जिसे चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य) को बतलाया कि कोतलेश नरेन्द्र विक्रमादित्य के ऊपर भरोसा कर काफी सुख-सुविधा की जिन्दगी जी रहे हैं । यही कौंतलेश, कुछ विद्वानों द्वारा[47] कदंब राजा भागीरथ, जबकि कुछ वाकाट्क राजा प्रवरसेन द्वितीय[48] के रूप में पहचान किये गये है । मिराशी, दूसरी ओर लिखता है कि कैंतलेशमयथैल में वर्णित कौंतल के राजा मान्यपुरा के राष्ट्रकूट वंश के प्रारंभिक राजा रहे होंगे । शायद देवराज भी हो सकते हैं जिनका समय 400-425 ई- के बीच रहा होगा ।

वाकाट्क कुन्तल के शासक थे, ऐसा कहना कठिन है कि क्योंकि प्रवरसेन द्वितीय ने अपने पुत्र की शादी कुन्तल के राजा के लड़की से की तथा कभी भी वाकाट्क अपने को कुन्तलवासी नहीं कहते ।[49] उनका राज्य कुंतल तक नहीं विस्तृत था जबकि कुछ वाकाटकों

ने इस पर आक्रमण भी किया था ।[50] मेहरौली शिलालेख के आधार पर मिराशी चन्द्रगुप्त द्वितीय का संबंध वाकाट्कों एवं प्रारंभिक राष्ट्रकूटों के साथ बतलाया है लेकिन इसका कोई दृढ़ ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है । गुप्त राजाओं का संबंध भले ही कदम्बों के साथ रहा होगा, जैसा कि तालगुंडा अभिलेख से पता चलता है कि कादम्ब राजा काकुत्सवर्मन ने अपनी पुत्री की शादी गुप्त युवराज से की थी ।[51]

मिराशी सिसोदरा के ताम्रपत्र के संदर्भ में कहता है कि राष्ट्रकूटों का संबंध गोमिनस परिवार से नहीं था । वह आगे लिखता है कि सतारा जिले के खानपुरा के अभिलेख से स्पष्ट होता है कि माधववर्मन मान्यपुरा राष्ट्रकूल से संबंधित था, लेकिन यह प्रमाण के अभाव में तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता ।

मान्यपुरा राष्ट्रकूटों के वंशावली का क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता है । एम-एच- कृष्ण के अनुसार- The Pandurangapali grant of Avidheya is assignable on the basis of its character of 576 A.D.[52]

उदिकवंतिका ग्रांट आंक अभिमन्यु का उल्लेख भगवानलाल ने पांचवीं सदी में किया है[53] जबकि अल्तेयर ने सातवीं सदी माना है । फ्लीट ने सातवीं सदी का मध्य भाग माना है जिसे Hultzsch ने भी स्वीकार किया है ।[54] पंचमुखी ने मध्यमार्ग अपनाते हुए चरित्र के आधार पर छठी सदी पर जो दिया है । इसको और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि In the matter of assigning dates to the records on the grounds of palaeography, the approximation has been often too wide of the mark.

तालगुड़ स्तंभ अभिलेख के अनुसार कीलहनि छठी सदी पर जोर देते हैं जबकि हाल के शोधलेखों के अनुसार पांचवीं सदी सबसे ज्यादा उपयुक्त है । इस प्रकार- The Undikavatika grant whose alphabets resemble closely to those of the charters of kadamba krishnavarman II, the Palmaru Pletes of vishnukumdin Madavaraman II, Janasraya and the Ramthirtham plates of Indraverman of Visnukundin dynasty may reasonably be pushed back to the sixth century A.D.

मिराशी के अनुसार, पादुरंगपल्ली अभिलेख से पता चलता है कि जूपिटर के बारह वर्ष चाल में एक वर्ष (भाद्रपद) का भी पता चलता है जिससे दक्षिण भारत के इतिहास में छठी सदी के बाद सुधार को भगवान लाल के विचारों में नहीं जोड़ा गया है । गुप्त-राष्ट्रकूट एवं वाकाट्क राष्ट्रकूट संबंध के बारे में मिराशी का विचार है कि 375 ई- से 400 ई- के बीच में मान्यपुरा के प्रारंभिक राष्ट्रकूट के प्रथम राजा मनांका था, जो वाकाट्क के वत्सगुल्म शासक के विंध्यसेन द्वितीय का समकालीन था जिसने 355 ई--400 ई- के मध्य शासन किया ।

डॉ- विरेन्द्र कुमार सिंह[55] का विचार है कि अभिमन्यु ऑफ द उंदिकवसिका ग्रांट, मनांका के तीन पीढ़ियां के बाद फला-फूला । प्रत्येक पीढ़ी के बीच पच्चीस वर्षों का अन्तराल मानकर, डॉ- सिंह ने अभिमन्यु का काल पांचवी सदी के अंत या छठी सदी का प्रारंभिक वर्ष माना है । डॉ- सिंह का विचार है कि इसका काल चालुक्य वंश के प्रथम राजा जयसिम्हा वल्लभ के काल में रहा होगा । वातापी के चालुक्यों का काल ज्ञात करने के लिए वादामी क्लीक अभिलेख (वालावेखर) देखने से स्पष्ट होता है कि उनका समय 543 ई- होगा ।[56] राजा पुलकेशिन प्रथम था उसने वातापी के दुर्ग का निर्माण कराया ।[57] पुलकेशिन द्वितीय का अलहोल शिलालेख से पता चलता है कि वह दो राजाओं के आगे का जिनका नाम क्रमशः सरागार तथा जयसिम्हा वल्लभ था । डॉ- सिंह ने सभी राजाओं के लिए पच्चीस वर्षों का समय निर्धारित करके पांचवीं सदी का अंतिम वर्ष अर्थात् 493 ई- माना है । इस तिथि से हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चालुक्य जयसिम्हा वल्लभ वही जयसिम्हा था जो प्रारंभिक राष्ट्रकूट राजा अभिमन्यु का सेनापति एवं हरीवत्स दुर्ग का प्रभारी था । डी-सी- सरकार का मत इससे भिन्न हैं ।[59] सरकार के विभिन्न विचारों के गहन अध्ययन के बाद डॉ- विरेन्द्र कुमार सिंह का मत है कि चालुक्यवंश का प्रथम राजा जयसिम्हा वल्लभ ही था जो इरिवत्स दुर्ग का दुर्गपति भी था जिसने प्रारंभिक राष्ट्रकूट राजाओं की कमजोरी का लाभ उठाकर एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की । ऐहोल अभिलेख (पुलकेशिन द्वितीय) के अनुसार जयसिम्हा वल्लभ का वृतांत इस प्रकार है ।

There was, of the Chalukya lineage, the king named Jaysimhavallabha, who in battle, whose horse, foot soldiers and elephants bewildered, fell down under the strokes of many hundreds of weapons, and where thousands of frightful headless trunks and of flashes of reys of swords were heaping to an for by his bravery made fortune his own leven though she was suspected of fickleness.[60]

इस अभिलेख द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि जयसिम्हा वल्लभ हरिवत्स दुर्ग का सेनापति रहते हुए भी (मानपुरा राष्ट्रकूट के अधीन) का भी महत्वकांक्षी हो गया एवं कालान्तर में चालुक्य शक्ति का संस्थापक बन बैठा । कल्याणी के चालुक्यों के रेकर्ड देखने से भी राष्ट्रकूटों के हार की पुष्टि होती है ।

ऊपर लिखे गये तथ्यों के खिलाफ कोई साक्ष्य यद्यपि उपलब्ध नहीं है तथा मिराशी द्वारा मनांका के अभ्युदय (375 ई--400 ई- के मध्य) का काल भी कठिनाइयों से परे नहीं है । सत्य यह है कि 470 ई- में वाकाट्कों के पतन के बाद ही मनांका के नेतृत्व में राष्ट्रकूटों का उत्कर्ष संभव हो सका । विदर्भ एवं अस्मक पर विजय प्राप्त करने का श्रेय भी मनांका को जाता है । बालघाट अभिलेख[61] के अनुसार वाकाट्क राजा पृथ्वीसेन द्वितीय (460-480 ए-डी-) को भी शत्रुओं का मुकाबला करना पड़ा । वी-सी- पांडेय का विचार है कि वे शभु नाला एवं भिकुट्क रहे होंगे ।62 लेकिन ऐसा प्रतीत

होता है कि राष्ट्रकूट मनांका, जिसका वर्ण पांडुरंगपल्ली प्लेट में आया है, जिसने विदर्भ एवं अस्मक् पर विजय भी पायी थी, यह वाकाट्क राजा पृथ्वीसेन द्वितीय का शत्रु भी रहा होगा । वाकाट्क वंश के प्रमुख पीढ़ी का अंत 480 ई- में हुआ होगा । जो भी सीमा मनांका ने बढ़ाई होगी, उसके अतिरिक्त वाकाट्कों के वत्सगुल्भ शाखा के हरिषेण ने जान ली होगी । मिराशी द्वारा निर्धारित 375-400 ई- के मध्य का काल सही नहीं लगता क्योंकि वाकाट्क उस समय सत्ता के चरमोत्कर्ष शिखर पर थे तथा उत्तरी भारत के सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के साथ उनकी गाढ़ी मित्रता थी, इसलिए मनांका द्वारा विदर्भ एवं अस्मक पर विजय प्राप्त करना आसान नहीं रहा होगा जिन पर कि वाकाट्कों का शासन भी था । अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि राष्ट्रकूटों का मनांका के नेतृत्व में उत्कर्ष 470 ई- के आस-पास हुआ होगा ।

मनांका के बाद देवराज राजा बना । उसका शासन काल पांचवीं सदी के तीन दशकों तक था । देवराज के बाद उसके तीन पुत्र क्रमशः विभुराज, अभिधेय एवं भविष्य राजा बने । देवराज का साम्राज्य तीन भागों में विभाजित था, जो महाराष्ट्र कहलाया । भविष्य का पुत्र अभिमन्यु था, जिसने छठी सदी के प्रथम दशक में सत्ता प्राप्त की थी । वह जयसिम्हा वल्लभ का समकालीन था । वदामी क्लीफ अभिलेख जबकि पुलकेशिन प्रथम के राज्यारोहण की तिथि 543 ई- निर्धारित करता है, इसलिए चालुक्य वंश का संस्थापक जयसिम्हा वल्लभ एवं उसके दो उत्तराधिकारी छठी सदी के द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में राजा रहे होंगे । इस तथ्य के आलोक में कहा जा सकता है कि राष्ट्रकूट एवं प्रारंभिक चालुक्य कुछ समय तक ही सत्तारूढ़ रह सके होंगे । वाकाट्कों के पतन के साथ ही राष्ट्रकूटों का अभ्युदय हुआ होगा । प्रारंभिक सफलता के साथ ही उन्होंने एक सुदृढ़ एवं मजबूत शासन वंश का स्थापना नहीं की थी जिसके कारण पचास वर्षों के अंतराल के बाद ही एक महत्वकांक्षी चालुक्य वंश की स्थापना हो गयी जिनका पुत्र भी वही हुआ तथा दंतिदुर्ग ने इम्पीरियल राष्ट्रकुट वंश की स्थापना आठवीं सदी के प्रारंभ में ही कर डाली ।

कल्याणी के चालुक्यों के हाथों राष्ट्रकूटों की पराजय एवं जयसिम्हा वल्लभ की दक्कन में राष्ट्रकूट राजा इन्द्र की पराजय के साथ ही हुई ।[63] अल्तेयर के अनुसार- Fabrication influenced by the reflection of the events of the 10th century A.D. when Rastrakutas suzerainty passed from successors of Krsna III to the founder of the later chalukya dynasty.[64] दूसरी ओर वी. के. सिन्हा का विचार है कि The valuable historical information contained in above records cannot be dismissed merely on such grounds although we do not find any such names as Indra, son of Krishna in the generalogical list of the early Rastrakutas of Manapura.

इसे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि It is possible that the engrvers of the records of the later chalukyas forgot the real names of the Rastrakuta Kings on account of the lapse of thime rent a faint recollection of historical fact that the early chalukyas came to power, after defeating the Rastrakutas, still persisted.

डॉ- सिंह का विचार तर्क संगत एवं युक्तिसंगत प्रतीत होता है क्योंकि यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रकूटों के तीन घरानों ने उसी स्थान पर ही शासन किया ।

कृष्ण के बारे में एम-एच-कृष्ण का विचार है कि वह अभिधेय का पुत्र था । सातवीं सदी एवं आठवीं सदी के प्रारंभ में हमें राष्ट्रकूट वंश की दो शाखा प्राप्त होती है; एक-विदर्भ में और दूसरी औरंगाबाद क्षेत्र में । बाद में उनमें एक सर्व प्रमुख शाखा जिसका संस्थापक दंतिदुर्ग था, जो दक्कन में राष्ट्रकूटों का प्रधान भी था।

तिवरखंड (631 ई-) और भलतार्द (709-10 ई.) प्लेट में नन्नराज उसके पिता, पितामह एवं प्रपितामह क्रमशः स्वामीक्राज, गोविन्दराज और दुर्गराज के वंशावली में65 उसके वंशजों में दंतिवर्मन, आदि का वर्णन है । दंतिदुर्ग, इंद्र प्रक्कराज, गोविन्दराज, कर्क प्रथम एवं इन्द्र द्वितीय प्रमुख हैं । अल्तेयर66 ने दंतिवर्मन के राष्ट्रकूट वंश की तुलना विदर्भ के रॉयल (राजसी) परिवार से की है और निम्नलिखित वंशावली को दर्शाया है ।

दुर्गराज
(573–590ई.)
↓
गोविन्दराज
(ए.डी. 590–610)
↓
स्वामिकराज
(ए.डी. 610–630)
↓
नन्नरात उर्फ यदसुरा
(ए.डी. 630–650)
↓
दंतिवर्मन
(ए.डी. 650–670)
↓
इन्द्र पुच्छकराज
(ए.डी. 670–690)

↓

गोविन्दराज

(ए.डी. 690-710)

↓

कर्क प्रथम

(ए.डी. 710-730)

↓

इन्द्र प्रथम

(ए.डी. 730-745)

↓

दंतिदुर्ग

(ए.डी. 745-756)

↓

कृष्ण प्रथम

(ए.डी. 756-775)

इस प्रकार छठी और सातवीं शताब्दियों में हम दक्कन के विभिन्न भागों में ऐसे अनेक सामंत घरानों को शासन करते पाते हैं। होशंगाबाद जिले में मान्यपुरा का अभिमन्यु ऐसा ही शासक था। छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में वह वर्तमान था। उससे थोड़े समय पहले ही उसने राष्ट्रकूट उपनाम धारण किया था। अभिमन्यु के बाद उसके घराने के बारे में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। उस समय बादामी के चालुक्यों के हृदय प्रदेश में ही अनेक राष्ट्रकूट शासक कर रहे थे। दक्षिण महाराष्ट्र के सेंदूक चालुक्यों के निकट के संबंधी थे। सातवीं शताब्दी के मध्य के आसपास इन सेंद्रकों की अपनी पड़ोसी राष्ट्रकूट घराने से प्रगाढ़ मैत्री थी।[67] किन्तु चालुक्यों के स्थान पर जिन राष्ट्रकूटों ने अपने वंश की स्थापना की थी उनका इन पूर्ववर्ती राष्ट्रकूटों से कोई संबंध न था। वे हैदराबाद राज्य के उस्मानबाद जिले के लटलूर, आधुनिक लाटूर, कन्नड़भासी इलाके में था और इन राष्ट्रकूटों की मातृभाषा भी कन्नड़ ही थी। दुर्गराज, गोविंदराज और स्वामिकराज, जो लगभग 570 से 630 ई- के बीच हुए, बादामी के चालुक्यों के अधीन जिलों के शासक मात्र थे। स्वामिकराज का पुत्र नन्मराज योय एवं महत्वकांक्षी था। वह लट्लूर से बरार चला आया। यहाँ उसने युद्ध में वीरता दिखाई। इसने संभवतः पुलकेशिन द्वितीय के अधीन लगभग 640 ई- में सामंत का पद प्राप्त कर बरार में अपने लिए एक छोटा सा सामंत प्रदेश भी बना लिया था जिसकी राजधानी अचलपुर थी, जो आज एलिचपुर के नाम से विख्यात है। अचलपुर जहाँ से इस परिवार का विकास हुआ, लट्लूर से सिर्फ 225 मील दूर था। इतिहास में ऐसे सैनिक काफी संख्या में मिलते हैं जो अपनी किस्मत आजमाने के लिए अपने घरों से बाहर निकल गये थे। चालुक्य वंश के ही कुछ लाग बादामी से निकल गये थे। चालुक्य वंश के ही कुछ लोग बादामी से निकलकर सुदूर गुजरात और आंध्रदेश में चले गये थे जहाँ उन्होंने अपना अलग राज्य बना लिए। इसी प्रकार सेन कर्नाटक से निकलकर बंगाल चले गये थे जहाँ उन्होंने अपना राज्य बना लिया था। महाराष्ट्र से अनेक मराठा परिवार बाहर गये जिनमें से कुछ तंजौर, इंदौर और ग्वालियर में अपने राज्य वंशों की स्थापना करने में सफल हो गए। अतः यदि नन्नराज उत्तर कर्नाटक से चलकर बरार आया और वहाँ उसने अवसर का लाभ उठाकर अपने लिए एक अलग छोटा-सा सामंत राज्य बना लिया तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

दंतिदुर्ग के उदय के समय यह परिवार चार पीढ़ियाें से बरार68 में रह रहा था। राष्ट्रकूट घराने की दो परिवारें क्रमशः औरंगाबाद जिले (प्राचीन मलका) और बरार (प्राचीन विदर्भ) पर शासन करता था। मिराशी69 द्वारा उनकी वंशावली इस प्रकार प्रस्तुत की गयी है:

मलका के राष्ट्रकूट	विदर्भ के राष्ट्रकूट
दंतिगर्मन (620-630)	दुर्गराज (630-650)
↓	↓
इन्द्र प्रथम (630-650)	गोविन्दराज (650-670)
↓	↓
गोविन्द प्रथम (650-670)	स्वामिकराज (670-690)
↓	↓
कर्क प्रथम (670-690)	नन्नराज (690-715)
↓	
इन्द्र द्वितीय (690-710)	
दंतिदुर्ग (710-750)	

लगभग 750 ई- में दंतिदुर्ग महाराष्ट्रीय बन चुका था क्योंकि हम उसे इस बात मे गर्व का अनुभव करते पाते हैं कि उसने अपने चालुक्य सम्राट कीर्तिवर्मन द्वितीय की कर्नाट सेनाआं को हराया।[70] किन्तु जब लगभग 760 ई- में उन्होंने कर्नाटक पर पुरी तरह से अधिकार कर लिया और अपनी राजधानी उसी प्रदेश में

मान्यखेट (आधुनिक मालखेड) में स्थापित की तो राष्ट्रकूट सम्राटों ने पुनः कर्नाटक की संस्कृति और रहन-सहन अपना लिया । इसके बाद उनके लेख कन्नड़ लिपि में मिलने लगते हैं । इनमें से अमोधवर्ष प्रथम ने तो कन्नड़ में एक ग्रंथ भी लिखा । इस ग्रंथ से मुदुवोलाल और कुपनगर के बीच प्रचलित शुद्ध कन्नड़ के प्रति उसके अनुराग का परिचय मिलता है ।

नन्नराज इस वंश का प्रथम व्यक्ति था जिसने सामंत पद पाया था । अतः हम उसे ही राष्ट्रकूट वंश का संस्थापक मानते हैं । उसने बाजपंक्षी को अपना वंश का राजचिन्ह बनाया । उसके वंशजों ने भी यही राज चिन्ह बनाये रखा । उसका शासनकाल लगभग 630 से 650 ई- के बीच में रख सकते हैं । नन्नराज के बाद उसका बेटा अथवा भतीजा दंतिदुर्ग गद्दी पर बैठा । उसने लगभग 650 से 665 ई- तक राज किया । उसकी मृत्यु के करीब 80 साल बाद राष्ट्रकूटों ने जो लेख आदि जारी किये थे, उनमें उसके राज्य काल का वर्णन आया है । किन्तु वह पारंपरिक शैली में ही है । जैसे, उनमें लिखा है कि कैसे बाहर से आनेवाले यात्री जब उन महलों में जाते थे जिनमें कभी उसके शत्रुओं का निवास था तो उन परित्यक्त महलों की दीवारों पर बने चित्रें को देखकर वे दुखी होते थे । इनमें किसी शत्रु का नाम नहीं दिया है । अतः ऐसे घिसे-पिटे वर्णनों का कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं है ।

दंतिदुर्ग के पुत्र का नाम इन्द्र पृच्छकराज और पौत्र का नाम गोविन्दराज था । उन्होंने लगभग 665 से 700 ई- तक राज्य किया । हमें उनके कार्यों के बारे में कोई जानकारी नहीं है । गोविन्द शैव था । उसके बारे में जानकारी मिलती है कि शिव के अतिरिक्त उसने अन्य किसी देवता के आगे सिर नहीं नवाया था । सर रा-गो-भंडारकर ने उसकी पहचान उसे गोविन्द से की है जिसने भीमा नदी के उत्तर से पुलकेशिन द्वितीय पर आक्रमण किया था ।[71] किन्तु उसका मत ग्राह्य नहीं है । पुलकेशिन द्वितीय के शत्रु गोविन्द का समय 610 से 630 ई- के बीच है ।[72] इन्द्र पुच्छकराज ने तो उससे 70 साल बाद राज्य किया था ।

गोविन्द प्रथम के बाद उसका बेटा कर्कराज गद्दी पर बैठा । उसने लगभग 700-715 ई- तक राज्य किया । वह वैष्णव था । बाद के प्रशस्तिकारों ने लिखा है कि उसका नाम सुनकर ही उसके शत्रुओं की पत्नियां की आंखों से आंसू एवं कलाइयों से कंगन गिर पड़ते थे ।[73] इस प्रकार की प्रशंसाओं के तत्कालीन इतिहास के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं होता । वस्तुतः अब तक जो भी प्रमाण उपलब्ध हैं उनसे उसके समय की घटनाओं का कुछ भी पता नहीं चलता।

कर्क के चार बेटे थे, उनके नाम इंद्र, ध्रुव[74], कृष्ण और नन्नाज थे । संभवतः इनका जन्म भी इसी क्रम से हुआ था । इनमें इन्द्र सबसे महत्वकांक्षी था । उसने लगभग 715 से 735 ई= तक राज किया । अपने भाईयां की सहायता से उसने अपने राज्य का उत्तर की ओर विस्तार किया था । शीघ्र ही उसमें मध्य प्रदेश के मराठी भाषी क्षेत्र शामिल हो गये थे । परन्तु वह चालुक्य राजा विजयादित्य (679 से 733 ई.) का सामंत बना रहा ।

इन्द्र के वर्धमान राज्य के दक्षिण में चालुक्यों का साम्राज्य पड़ता था । इंद्र चालुक्य विक्रमादित्य का सामंत था । पश्चिम में गुजरात के चालुक्यां का, जिनकी राजधानी नौसारी नंदिपुरी थी जो सूरत जिले में है और गुर्जरों का राज्य था जिनकी राजधानी नंदिपुरी अथवा नांदोद थी । यह स्थान मडोच से करीब 28 मील उत्तर पूरब में है । ये दोनों राज्य क्षेत्र और साधनों की दृष्टि से इन्द्र के राज्य से हीन थे । नौसारी ने चालुक्य राजा मंगलराज विक्रमादित्य था जिसने लगभग 700 से 732 ई- तक राज्य किया । नंदिपुरी के गुर्जर राजा जश्भट तृतीय के शासन की अवधि भी लगभग यही (700 से 735 ई.) है । वलभी का राजा शीखादिल्पपंचम (लगभग 710 से 730 ई.) भी इंद्र का समकालीन था । यह उत्तर गुजरात में कैरा और पंचमहल जिलों का राजा था ।

इन्द्र प्रथम के शासन की सिर्फ एक घटना का पता चलता है । वह यह कि उसने गुजरात के कैरा नामक स्थान में चालुक्य राजा को युद्ध में हराकर उसकी राजकुमारी भवनागा से राक्षस विवाह किया था ।[75] खेद है कि उस चालुक्य राजा का नाम कहीं नहीं दिया गया है । संभवतः वह चालुक्य सामंत मंगलराज विजयादित्व अथवा उसका छोटा भाई पुलकेशिन रहा होगा । चालुक्यों का एक छोटा-सा राज्य था जो ताप्ती के परे नहीं था । ताप्ती और कैरा के बीच जहाँ यह घटना घटी थी वह स्थान नंदिपुरी के गुर्जरों के सामंत राज्य था, फिर भवनागा का विवाह केरा में क्यों हुआ, वह तो वल्लभी के मैत्रकों के राज्य में स्थिति थां यह एक पहेली ही है । इसका एकमात्र कारण यह हो सकता है कि राजकुमारी का विवाह संभवतः वलल्भी के राजकुमार के साथ होना निश्चित हुआ होगा । कैरा में इकसे लिए एक 'पंडाल' मं एक प्रकार के 'स्वयंवर' का आयोजन किया गया होगा । संभवतः इन्द्र भी उस 'स्वयंव ' में दर्शक के रूप मं आया होगा और राजकुमारी के पिता की इच्छा के खिलाफ स्वयंवर स्थल से राजकुमारी को भगा ले गया होगा ।[76] इससे चालुक्य राजा मंगलराज और इंद्र के बीच अनबन अवश्य ही हुई होगी । किन्तु हिन्दु विवाह तो एक संस्कार होता है जिसे भंग नहीं किया जा सकता ।77 इसलिए अंततोगत्वा मंगलराज को अपने दामाद से मेल करना ही पड़ा होगा । यह विवाह लगभग 691 ई- में हुआ होगा ।[78]

इन्द्र के इस 'राक्षस विवाह' से यही स्पष्ट होता है कि इंद्र उस समय तक दुगुना शक्तिशाली हो चुका था वह एक साथ ही गुजरात के चालुक्यां और वल्लभी के मैत्रकों को चुनौती दे सके । इस घटना

के बाद उसकी प्रतिष्ठा और महत्वाकांक्षा बढ़ गयी होगी । फिर उसने किस प्रकार उत्तर में मध्य प्रदेश के मराठी क्षेत्र में राज्य का विस्तार किया ।

REFERENCES

1. Miraj Plates and Yevur tablet brought to light by wathen and walter Elliot-Journal of the Royal Asiatic Society (JRAS), II, III, IA, VIII, p. 12.

2. जी. याजदानी, पूर्वो., पृ. 235

3. आर.जी. भंडाकर, हिस्ट्री ऑफ दक्कन, पूना, 1934, पृ. 106

4. यस्मिन् सर्वगुणात्रये क्षितिपती श्रीराष्ट्रकुटान्वये । जाते यादववंशव न्मयुरियो आसीदत्यध्यः परेः ।। ई. ऐ. 11, पृ. 157

5. वरनेज, साउथ इंडियन पेलियोग्राफी पृ. 10

6. आर. जी. भंडारकर, पूर्वो. पृ. 106

7. जे. एफ. फ्लीट, बाम्बे गजेटियर, खंड-1, भाग-2, पृ. 384

8. अनन्नत एक्दसश्वि अल्तेकर, राष्ट्रकुटाज एण्ड देयर टाइम्स, पूणे, 1934, पृ. 26-27

9. Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, xviii, p. 260.

10. In the Seramtaluk of the Gulbarga District, about 144 Kms, in a south-eastern direction from sholapur, and about 136 kms, west by south from Hyderabad. The city conteins an old for on the river kaglvi or kagna also called the Tandur river, a tributary of Bhima. G. Yazdani, op.cit., p.61.

11. वही, पृ. 17-18 और 201-

12. इपीग्राफीक इंडिका, पृ. 1631-

13. वही, पृ. 23

14. मैसूर सर्वे रिपोर्ट, 1929, पृ. 197

15. El, Ix, p. 174, Hingni Berdi is a small village on the bank of Bhima river near ihond in Poona district.

16. ए.पी. भदान, पूर्वो, पृ. 17

17. वही, पृ. 17

18. KURACV, 56; CA, p. 200-201

19. IA, XXX, pp. 509 ff.

20. AR, p. 51

21. XVIII, पृ. 233 । यह मानपुर परगना का प्रमुख शहर है तथा माहो से 19 किमी. दक्षिण पूर्व में स्थित है ।

22. डिब्रेली, Ancient History of the Deccan, Pondicherry, 1920 m p. 77

23. AR, p. 5

24. ABORI, XXIV, pp. 149

Altekar argued that:

(i) the Kautham grants statements that Rastrakuta King Indra, son of Krishna was defeated by Jaysimha was a myth invented by the later chaluky as was proved from the silence about the event in the alhole inscription.

(ii) Only are record terms these kings as Rastrakutas;

(iii) The major part of Maharastra was ruled by other Kings such as the Nalas, the Mauryas, the Kalachuris and the Kademba as and not only the Rastrakutas; and

(iv) There was no evidence to determine that Avidheya of Pandurangapalli and Abhimanyu of Undikavatika ecords were the descendents of Mananka and Devaraja.

25. CA, p. 200

26. गोदावरी का दक्षिणी क्षेत्र से तात्पर्य अहमदनगर एवं मीर जिलों में है ।

27. राजशेखर-काव्यमिमांशा, पृ. 90

तत्रास्ती मनोजनाम्नो देवस्था कृदवासों विदमव्यु वात्सगुल्मम्नामा नगरम् ।

28. The statement in the Udayasundarikatha too speeaks of the political location of kundtala in about 1000 A.D. when it extended upto Godavari.

29. ऐहोल शिलालेख, पूर्वो.

30. ए.पी. भदान, पूर्वो., पृ. 32

31. जी. याजदानी, पूर्वो, पृ. 237

32. जी. याजदानी, पूर्वो, पृ. 237 ध्रुव कर्क का बेटा था, यह एक संभाव्य कल्पना है जिसका आधार कर्क द्वितीय द्वारा ध्रुव का परपोता था । इस मान्यता का प्रस्ताव डॉ. भगवान लाल इन्द्र जी ने किया था ।

33. समनगाड प्लेट ऑफ दंतिदुर्ग (IA, XI, pp, 111ff.) समनगाड प्लेट में राजकुमारी का कहीं नाम अंकित नहीं है लेकिन मंडक में भवनाग नाम दिया गया है ।

34. ए.पी. भदान, पूर्वो., पृ. 31-इन्द्रराजस्ततो गृहात् यश्चालुक्य

नृपात्मजा ।

राक्षसेन विवाहेन रणे सेटक मण्डये ।

संजनदान पत्र-61

35. YEHD, p. 252 दषिप्रक्रिया इन्डिका खण्ड 18, पृ. 235-257

36. इस बात की संपुष्टि इस तथ्य से होती है कि दंतिदुर्ग का शासनकाल 715 ई. में शुरू हुआ जबकि यह 25 वर्ष की आयु का रहा होगा ।